

यह लेख पाठ्यपुस्तकों पर चली बहस को पाठ्यपुस्तक निर्माण में समझ की बेहतरी के लिहाज से स्वागत योग्य मानता है। परंपरागत पाठ्यपुस्तकों के बरक्स एनसीएफ 2005 के तहत निर्मित पाठ्यपुस्तकों के समक्ष क्या चुनौती थी? क्यों टैक्स्ट (पाठ) के साथ विविध प्रकार की सामग्री का उपयोग किया गया? लेख उस नजरिए को पाठकों के सामने रखता है जिसके चलते पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति ने पाठ्यपुस्तकों में विविध प्रकार की सामग्री के उपयोग की जरूरत महसूस की।

## स्कूलों में सामाजिक विज्ञान की छवि

अलेक्स एम. जॉर्ज

**आ**ज देश में इस बात पर बहस चल रही है कि स्कूली पाठ्यपुस्तकों में कार्टूनों को स्थान मिलना चाहिए या नहीं।

स्कूल शिक्षा और खासकर पाठ्यपुस्तकों को लेकर हमारी समझ को बेहतर बनाने की दृष्टि से ऐसी बहसें स्वागत योग्य हैं। अलबत्ता, इससे पहले कि सुखदेव सिंह थोराट की अध्यक्षता में बनी समीक्षा समिति सारे कार्टूनों को पाठ्यपुस्तकों से निकाल फेंके, पाठ्यपुस्तक निर्माण के कुछ पहलुओं को समझने से मदद मिलेगी। खास तौर से चित्रों के चयन से संबंधित पहलुओं को समझना मुनासिब होगा।

पाठ्यपुस्तकों के लिए चित्र खोजना एक चुनौती होती है और सामाजिक अध्ययन के संदर्भ में तो यह चुनौती और भी कठिन होती है। अव्वल तो पाठ्यपुस्तकों में लेख प्रोफेसर लोगों के होते हैं जिन्हें भारी-भरकम पाठ्यवस्तु वाली किताबें पढ़ने की आदत होती है। इन पुस्तकों में आवरण पृष्ठ ही थोड़ी-बहुत चित्रात्मक राहत प्रदान करता है। कहने का मतलब यह है कि विशेषज्ञ सामाजिक विज्ञान के बारे में चित्रों की अपेक्षा लिखित पाठ के रूप में सोचते व सीखते आए हैं। दूसरी बात यह है कि नई पाठ्यचर्या (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005) के तहत पाठ्यपुस्तकें तैयार करते समय लेखकों को न सिर्फ चित्रों के बारे में सोचना था बल्कि उन्हें स्कूली पाठ्यपुस्तकों में चित्रों की पारंपरिक सोच के बोझ से भी पार पाना था।

यह चित्र परंपरा क्या रही है? हमारी पारंपरिक स्कूली पाठ्यपुस्तकों

### परिचय

लेखक कक्षा से 9-12 की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने वाले दल के सदस्य थे। वे 'टीचिंग सोशल साइन्स इन स्कूल्स' (सेज पब्लिकेशन्स, 2009) के लेखक भी हैं।

में फोटोग्राफ, रेखाचित्र वगैरह रहते तो अवश्य थे मगर इनमें कुछ पैटर्न देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में प्रायः ऐसे व्यक्तियों के फोटोग्राफ हुआ करते थे जिन्हें नायक (या खलनायक) माना गया है। जहां अतीत की किसी रानी या राजा का चित्र उपलब्ध न होता, तो हम विशेष शैली में चित्र (स्टायलाइज्ड चित्र) या झूठमूठ के चित्रों का उपयोग कर लेते थे। इसमें किसी को कोई गड़बड़ नहीं लगती थी क्योंकि पाठ्यवस्तु भी तो कौन, कब, कहाँ, राजा-रानी, नेताओं या घटनाओं का विवरण भर ही होती थी। इस पैटर्न ने इस विश्वास को बढ़ावा दिया कि पाठ्यपुस्तकों में किसी व्यक्ति के नाम के उल्लेख होने या न होने भर से विभिन्न विचारधाराओं के बीच सत्ता संतुलन बदल सकता है।

अलबत्ता, पाठ्यपुस्तकों में इन चित्रों का मकसद सोचने के लिए उकसाना नहीं बल्कि सम्मान/पूजा की भावना को बढ़ावा देने का होता था। इन्होंने इस धारणा को बढ़ावा दिया कि राजनैतिक व सामाजिक प्रक्रियाएं अनिवार्य रूप से व्यक्तियों से जुड़ी हैं। जैसे राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी या भगत सिंह के कार्यों को लीजिए। स्वतंत्रता आंदोलन के लंबे-लंबे विवरणों में नायकों (और कभी-कभार रस्म अदायगी के लिए नायिकाओं) के चित्र जोड़ देने से आम लोगों की सामूहिक क्रियाओं पर ध्यान ही नहीं जाता।

एक बार आप इस चित्र-परंपरा - बहुत सीमित किस्म के चित्रों का उपयोग और पाठ्यवस्तु के संदेशों को शैक्षिक औजारों द्वारा पुष्ट करना - को पहचान लें, तो आप देख पाएंगे कि इसकी जड़ें भी पुराने पाठ्यक्रम में हैं। पारंपरिक पाठ्यपुस्तकें पाठक को बताती थीं कि सामाजिक विज्ञान मूलतः जानकारियों का पुलिंदा है और व्याख्या अथवा विश्लेषण से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। यह मानकर चला जाता था कि किशोर विद्यार्थी अपने विवेक का उपयोग करने, विचारों पर विचार-विमर्श या बहस करने में असमर्थ होते हैं और इसलिए उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि घटनाएं फलां-फलां ढंग से हुई थीं। फोटोग्राफ व अन्य चित्र ज्ञान को ऐसे रूप में प्रस्तुत करते थे जो बच्चों के लिए उपयुक्त माना जाता था यानी जानकारी के रूप में।

अलबत्ता, नई पाठ्यचर्या ढांचे में पाठ्यपुस्तकों की कल्पना आधिकारिक रूप से स्वीकृत जानकारी के पुलिंदे के रूप में नहीं की गई है जिसे शिक्षक के माध्यम से पहुंचाया जाना है। दरअसल, कल्पना यह थी कि शिक्षक बच्चों के साथ चर्चा को संभव बनाने के लिए कई संसाधनों का उपयोग करेंगे और पाठ्यपुस्तकें उनमें से एक होगी। ऐसी पाठ्यपुस्तकों में चित्रण के एक ज्यादा व्यापक व विविध खजाने की जरूरत थी।

लिहाजा, नई पाठ्यपुस्तकों में कार्टूनों, पोस्टर और पेंटिंगों का उपयोग लाजमी था क्योंकि इस तरह के चित्र कक्षा में भावनाओं को उभारते हैं और चर्चा को प्रेरित करते हैं। किसी रौबीले चेहरे वाले फोटोग्राफ या रेखाचित्र के विपरीत ये विविध चित्र एकाधिक व्याख्याओं और असहमतियों की गुंजाइश देते हैं। नई पाठ्यचर्या चाहती है कि कक्षा पारंपरिक 'शिक्षक-केंद्रित', अनुशासित स्थान की बजाय एक ऐसा स्थान बने जहां विद्यार्थी सक्रिय व जीवंत रहें। ऐसा लग रहा था कि राज्य विद्यार्थियों के बीच बहसों और एक अनुशासन-मुक्त कक्षा के प्रति सहज है। तो अब अचानक क्या हुआ? सरकार ने गुलाटी क्यों मारी?

राजनीति विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकों में नवीनता सिर्फ चित्रों में नहीं, पाठ्यवस्तु में भी दिखती है। हमारा सामना भिन्न किस्म की विवरण शैलियों से होता है: कहानियां, प्रकरण विवरण, अखबार की कतरनें, खुले सवाल, कविताएं और जीवनियां। कक्षा 10 की पाठ्यपुस्तक में दलित लेखक दया पवार की एक कविता के

**पारंपरिक पाठ्यपुस्तकें पाठक को बताती थीं कि सामाजिक विज्ञान मूलतः जानकारियों का पुलिंदा है और व्याख्या अथवा विश्लेषण से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। यह मानकर चला जाता था कि किशोर विद्यार्थी अपने विवेक का उपयोग करने, विचारों पर विचार-विमर्श या बहस करने में असमर्थ होते हैं और इसलिए उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि घटनाएं फलां-फलां ढंग से हुई थीं।**



अंश अत्यंत सशक्त हैं और किसी भी कार्टून के बराबर विचारोत्तेजक हैं। यह एक शैक्षिक औजार है जो हाशियाकरण (मार्जिनेलाइजेशन) को समझने की प्रक्रिया का शुरुआती बिंदु बन सकता है। इस तरह से, पाठ्यपुस्तकें स्कूल स्तर पर विषय को नए ढंग से परिभाषित कर रही थीं- राजनीति विज्ञान अब महज नियम-कायदों की फेहरिस्त या राजनैतिक वर्ग की शक्तियों व कार्यों की फेहरिस्त भर नहीं रह जाएगा।

कार्टून राजनैतिक वक्तव्य होते हैं। ये राजनैतिक घटनाओं पर दोटूक व खरी टिप्पणी देते हैं और ये किसी अखबार के संपादकीय पन्ने की जगह ले सकते हैं या उसका निचोड़ पेश कर सकते हैं। तो, यदि विद्यार्थियों को अखबारों का लुत्फ उठाना है या उनका विश्लेषण करना है तो कार्टूनों को क्यों अलग रखा जाए? कार्टून की सही जगह राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में है। राजनैतिक घटना क्रम या मुद्दों को समझते हुए विद्यार्थियों को पुराने रिकॉर्ड का लाभ मिलना ही चाहिए। लिहाजा किसी दूसरे जमाने के कार्टून कोई अपवाद नहीं हैं।

आम समझ यह है कि कार्टून में किसी भी मुद्दे पर एक मुस्कान पैदा करने की ताकत होती है। अलबत्ता यह मानना होगा कि किसी भी राजनेता या राजनैतिक विचारक के समान कार्टूनिस्ट भी समकालीन घटनाओं की एक बहु-आयामी समीक्षा पेश करता है। लिहाजा, सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तक का चित्रांकन करते हुए हमें इस गलत धारणा से पार पाना होगा कि कार्टूनिस्ट सिर्फ हमें गुदगुदाना चाहता है। इस गलतफहमी को भी दुरुस्त करना जरूरी है कि सारे कार्टून राजनैतिक वर्ग का मखौल बनाने की कोशिश करते हैं। कार्टून विविध परिप्रेक्ष्यों की गुंजाइश प्रदान करते हैं।

समय-समय पर पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा जरूरी है। मगर किसी विवाद की आहट होते ही किसी शैक्षिक उपकरण को तिलांजलि देने की बजाय यह समझने की जरूरत है कि कक्षा में बिंब और पाठ के विभिन्न स्वरूपों का महत्त्व है। वास्तविक दुनिया में विविध परिप्रेक्ष्य होते हैं: पाठ्यपुस्तकों को अवास्तविक बनाने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। ♦

**भाषान्तर : सुशील जोशी**